Insha Allah Khan (circa1803)

रानी केतकी की कहानी

यह वह कहानी है कि जिसमें हिन्दी छुट।
और न किसी बोली का मेल है न पुट॥

सिर झुकाकर नाक रगड़ता हूँ उस अपने बनानेवाले के सामने जिसने हम सब को बनाया और बात की बात में वह कर दिखाया कि जिसका भेद किसी ने न पाया। आतियाँ जातियाँ जो साँसें हैं उसके बिन ध्यान यह सब फाँसें हैं। यह कल का पुतला जो अपने उस खेलाड़ी की सुध रक्खे तो खटाई में क्यों पड़े और कड़वा कसैला क्यों हो। उस फल की मिठाई चक्खे जो बड़े से बड़े अगलों ने चक्खी है।

देखने को दो आँखें दीं और सुनने को दो कान।
नाक भी सब में ऊँची कर दी मरतों को जी दान।।

मिट्टी के वासन को इतनी सकत कहाँ जो अपने कुम्हार के करतब कुछ ताड़ सके। सच है, जो बनाया हुआ हो, सो अपने बनानेवाले को क्या सराहे और क्या कहे। यों जिसका जी चाहे, पड़ा बके। सिर से लगा पाँव तक जितने रोंगटें हैं, जो सबके सब बोल उठें और सराहा करें और उतने बरसों उसी ध्यान में रहें जितनी सारी नदियों में रेत और फूल फलियाँ खेत में हैं, तो भी कुछ न हो सके, कराहा करें। इस सिर झुकाने के साथ ही दिन रात जपता हूँ उस अपने दाता के भेजे हुए प्यारे को जिसके लिए यों कहा है – जो तू न होता तो मैं कुछ न बनाता; और उसका चचेरा भाई जिसका व्याह उसके घर हुआ, उसकी सुरत मुझे लगी रहती है। मैं फूला अपने आप में नहीं समाता, और जितने उनके लड़के-वाले हैं, उन्हीं को मेरे जी में चाह है। और कोई कुछ हो, मुझे नहीं भाता। मुझको उस घराने छुट किसी चोर ठग से क्या पड़ी! जीते और मरते आसरा उन्हीं सभों का और उनके घराने का रखता हूँ तीसों घड़ी।

डौल डाल एक अनोखी बात का

एक दिन बैठे-बैठे यह बात अपने ध्यान में चढ़ी कि कोई कहानी ऐसी कहिए कि जिसमें हिंदवी छुट और किसी बोली का पुट न मिले, तब जाके मेरा जी फूल की कली के रूप में खिले। बाहर की बोली और गँवारी कुछ उसके बीच में न हो। अपने मिलनेवालों में से एक कोई बड़े पढ़े-लिखे, पुराने-धुराने, डाँग, बूढ़े घाग यह खटराग लाए। सिर हिलाकर, मुँह थुथाकर, नाक भौं चढ़ाकर, आँखें फिराकर लगे कहने – यह बात होते दिखाई नहीं देती। हिंदवीपन भी न निकले और भाखापन भी न हो। बस जैसे भले लोग अच्छों से अच्छे आपस में बोलते चालते हैं, ज्यों का त्यों वही सब डौल रहे और छाँह किसी की न हो, यह नहीं होने का। मैंने उनकी ठंडी साँस का टहोका खाकर झुँझुलाकर कहा – मैं कुछ ऐसा बढ़-बोला नहीं जो राई को परबत कर दिखाऊँ और झूठ सच बोलकर उँगलियाँ नचाऊँ, और बे-सिर बे-ठिकाने की उलझी-सुलझी बातें सुनाऊँ। जो मुझ से न हो सकता तो यह बात मुँह से क्यों निकालता? जिस ढब से होता, इस बखेड़े को टालता।

इस कहानी का कहनेवाला यहाँ जताता है और जैसा कुछ उसे लोग पुकारते हैं, कह सुनाता है। दहना हाथ मुँह पर फेरकर आपको जताता हूँ, जो मेरे दाता ने चाहा तो यह ताव-भाव, राव-चाव और कूद-फाँद, लपट-झपट दिखाऊँ जो देखते ही आप के ध्यान का घोड़ा, जो बिजली से भी बहुत चंचल अचपलाहट में है, हिरन के रूप में अपनी चौकड़ी भूल जाय।

टुक घोड़े पर चढ़के अपने आता हूँ मैं
करतब जो कुछ है, कर दिखाता हूँ मैं।।
उस चाहनेवाले ने जो चाहा तो अभी।
कहता जो कुछ हूँ, कर दिखाता हूँ मैं।।

अब आप कान रख के, आँखें मिला के, सन्मुख होके टुक इधर देखिए, किस ढब से बढ़ चलता हूँ और अपने फूल की पंखडी जैसे होठों से किस-किस रूप के फूल उगलता हूँ।

कहानी के जोबन का उभार और बोलचाल की दुलहिन का सिंगार

किसी देश में किसी राजा के घर एक बेटा था। उसे उसके माँ-बाप और सब घर के लोग कुँवर उदैभान करके पुकारते थे। सचमुच उसके जोबन की जोत में सूरज की एक सोत आ मिली थी। उसका अच्छापन और भला लगना कुछ ऐसा न था जो किसी के लिखने और कहने में आ सके। पंद्रह बरस भरके उनने सोलहवें में पाँव रक्खा था। कुछ योंही सी उसकी मसें भीनती चली थी। अकड़-तकड़ उसमें बहुत सारी थीं। किसी को कुछ न समझता था। पर किसी बात के सोच का घर घाट न पाया था और चाह की नदी का पाट उनने देखा न था। एक दिन हरियाली देखने को अपने घोड़े पर चढ़के अठखेल और अल्हड़पन के साथ देखता-भालता चला जाता था। इतने में जो एक हिरनी उसके सामने आई, तो उसका जी लोट-पोट हुआ। उस हिरनी के पीछे सब छोड़ छाड़कर घोड़ा फेंका। कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब सूरज छिप गया और हिरनी आँखों से ओझल हुई, तब तो कुँवर उदैभान भूखा, प्यासा, उनींदा, जँभाइयाँ, अगड़ाइयाँ लेता, हक्का-बक्का होके लगा आसरा ढूँढ़ने। इतने में कुछ एक अमरइयाँ देख पड़ीं, तो उधर चल निकला; तो देखता है जो चालीस-पचास रंडियाँ एक से एक जोबन में अगली झूला डाले पड़ी झूल रही हैं और सावन गातियाँ हैं। ज्यों ही उन्होंने उसको देखा–तू कौन? तू कौन? की चिंघाड़-सी पड़ गई। उन सभों में एक के साथ उसकी आँख लग गई।

कोई कहती थी यह उचक्का है।
कोई कहती थी एक पक्का है।

वही झूलने वाली लाल जोड़ा पहने हुए, जिसको सब रानी केतकी कहती थीं, उसके भी जी में उसकी चाह ने घर किया। पर कहने-सुनने को बहुत सी नाँह-नूँह की और कहा– "इस लग चलने को भला क्या कहते हैं! हक न धक, जो तुम झट से टहक पड़े। यह न जाना, यहाँ रंडियाँ अपने झूल रही हैं। अजी तुम जो इस रूप के साथ इस रव बेधड़क चले आए हो, ठंडे-ठंडे चले जाओ।" तब कुँवर ने मसोस के मलोला खाके कहा– "इतनी रुखाइयाँ न कीजिए। मैं सारे दिन का थका हुआ एक पेड़ की छाँह में ओस का बचाव करके पड़ रहूँगा। बड़े तड़के धुँधलके में उठकर जिधर को मुँह पड़ेगा चला जाऊँगा। कुछ किसी का लेता देता नहीं। एक हिरनी के पीछे सब लोगों को छोड़-छाड़कर घोड़ा फेंका था। कोई घोड़ा उसको पा सकता था? जब तलक उजाला रहा उसके ध्यान में था। जब अँधेरा छा गया और जी बहुत घबरा गया, इन अमरइयों का आसरा ढूँढकर यहाँ चला आया हूँ। कुछ रोक टोक तो इतनी न थी जो माथा ठनक जाता और रुक रहता। सिर उठाए हाँपता चला आया। क्या जानता था– यहाँ पद्मिनी पड़ी झूलती पैंगें चढ़ा रही हैं। पर यों बदी थी, बरसों मैं भी झूला करूँगा।"

यह बात सुनकर वह जो लाल जोड़ेवाली सबकी सिरधरी थी, उसने कहा– "हाँ जी, बोलियाँ ठोलियाँ न मारो और इनको कह दो जहाँ जी चाहे, अपने पड़ रहें; और जो कुछ खाने को माँगें इन्हें पहुँचा दो। घर आए को आज तक किसी ने मार नहीं डाला। इनके मुँह का डौल, गाल तमतमाए, और होंठ पपड़ाए, और घोड़ों का हाँपना, और जी का काँपना, और ठंडी साँस भरना, और निढाल हो गिरे पड़ना इनको सच्चा करता है। बात बनाई हुई और सचौटी की कोई छिपती नहीं। पर हमारे इनके बीच कुछ ओट कपड़े-लत्ते की कर दो।" इतना आसरा पाके सब के परे जो कोने में पाँच सात पौदे थे उनकी छाँव में कुँवर उदैभान ने अपना बिछौना किया और कुछ सिरहाने धरकर चाहता था कि सो रहें, पर नींद कोई चाहत की लगावट में आती थी? पड़ा-पड़ा अपने जी से बातें कर रहा था। जब रात साँयँ- साँयँ बोलने लगी और साथवालियाँ सब सो रहीं, रानी केतकी ने अपनी सहेली मदनवान को जगाकर यों कहा– "अरी ओ, तूने कुछ सुना है? मेरा जी उस पर आ गया है; और किसी डौल से थम नहीं सकता। तू सब मेरे भेदों को जानती है। अब होनी जो हो सो हो; सिर रहता रहे, जाता जाय। मैं उसके पास जाती हूँ। तू मेरे साथ चल। पर तेरे पाँवों पड़ती हूँ, कोई सुनने न पाए। अरी यह मेरा जोड़ा मेरे और उसके बनानेवाले ने मिला दिया। मैं इसी जी में इस अमरइयों ...